कालीकट सम्मेलन–एक रपट

दहलीज के पार

सुहास कुमार

27 दिसंबर 1990 का दिन। कालीकट (केरल राज्य) का स्टेशन महिलाओं के पैरों की चापों से भर उठा था। महिलाएं जो राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, पंजाब और पश्चिमी बंगाल से आई थीं।

हम तीन दिन का सफर कर कालीकट पहुंचे थे मगर थकान का नामोनिशान नहीं था। दिल्ली से हम 50-60 महिलाओं का सफर जब एक साथ शुरू हुआ, हम पर जैसे उत्साह का नशा सा छाया हुआ था। अधिकांश के लिए इतने बड़े महिला सम्मेलन में जाने का यह पहला अवसर था। तीन दिन का सफर गाते-बजाते, बतियाते कैसे और कब बीत गया पता ही नहीं चला। हमारे साथ उत्तर प्रदेश और राजस्थान की कुछ महिलाएं भी थीं। उनका सफर एक या दो दिन पहले शुरू हो चुका था।

स्टेशन से सेंट जेवियर कालेज (जो 28 से 31 दिसंबर तक हमारी गतिविधियों का केंद्र बना रहा) तक का रास्ता हमारे गीतों से गूंज उठा। बस में बैठते ही हमें लेने आई कर्नाटक की एक महिला ने कहा, "वह गाना गाओ, वही 'चेत' वाला जो हमने पिछले मार्च में हुए राजस्थान के महिला-मेले में गाया था।"

हमारा समूह गान तुरंत शुरू हो गया।

बहना चेत सके तो चेत
जमानो आयो चेतन को
एक दो के चेतवा से
कुछ न फरको आयो
दो चार के चेतवा से
कुछ झंकारो आयो
सारा गांव की बहना चेतीं
धरती पलटो खायो।

कालीकट में अलग-अलग राज्यों, वर्गों, समूहों, जाति और धर्मों की लगभग 2,000 महिलाएं जुटीं। आखिर क्या कहने सुनने की चाह हमें हजारों मील दूर भारत के सुदूर दक्षिण ले गई। हम जो चार घंटे

भी आसानी से घर नहीं छोड़ पाते हैं। भावनाओं, अनुभवों का एक बांध, जो टूट कर बहने को उतावला था। बहनें अपनी कहना व दूसरों की सुनना चाहती थीं।

चर्चा के मुद्दे

बहनें बात करना चाहती थीं महिलाओं पर बढ़ती हिंसा पर, जाति और धार्मिक रूढ़िवाद पर, धर्म के नाम पर होने वाले दंगों से अपने ऊपर पड़े असर पर। करना चाहती थीं चर्चा स्वास्थ्य और कानूनी कमजोरियों की, राजनीति और पर्यावरण की, संचार माध्यमों और सांस्कृतिक समझ की, नारीवाद और राष्ट्रीय योजना नीति की।

इन्हीं सब विषयों को ध्यान में रखकर 9 समूहों में चर्चा चली। वहां कोई भाषण नहीं दिए गए। लेख नहीं पढ़े गए। महिलाओं को पूरी छूट थी वह जिस सामूहिक चर्चा में चाहें भाग लें। इतने कम समय में जितनों को बात कहने का मौका दिया जा सकता था दिया गया। फिर भी कई बातें अनकही और अनसुनी रह गईं। महिलाओं ने इन बड़े गुटों में ही भाग लेना पसन्द किया। इतने बड़े गुटों में हम कब कहां जुड़ पाते हैं।

स्वास्थ्य नीति और परिवार नियोजन

बात चली स्वास्थ्य और परिवार कल्याण नीति पर। बहनों का कहना था कि नीति परिवार नियोजन के आंकड़ों तक सीमित होकर रह गई है। महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं पर नहीं के बराबर ध्यान दिया जाता है। क्यों एक को छोड़कर सारे गर्भ-निरोधक स्त्रियों के लिए ही बनाए गए हैं? क्या 'पिल' पुरुषों के लिए नहीं बनाई जा सकतीं? उन नीतियों में महिलाओं की सीधी भागीदारी न होने की वजह से उनकी मुश्किलों और परेशानियों पर खास ध्यान नहीं दिया जाता है। औरत बच्चा पैदा करती है, 9 महीने कोख में रखती है, उस पर अधिकार पहले पुरुष का होता है।

पर्यावरण समूह में चर्चा हुई—हिरोशिमा-नागासाकी पर बम गिरने की, भोपाल, चिर्नोबिल के गैस कांडों की, और नर्मदा बांध की। कौन इनका लंबा असर झेलता है? इनसे किनको फायदा होता है? प्रभावित लोगों के सही आंकड़े जनता के सामने क्यों नहीं रखे जाते?

स्त्री व कानून समूह में इस बात पर खास जोर रहा कि कई जगह कानून में बदलाव की सख्त जरूरत है। पहला अभिभावक मां को माना जाना चाहिए। बाल विवाह, दहेज, बलात्कार, सती प्रथा आदि पर बने कानून सुधार के बावजूद भी बहुत कमजोर हैं।

महिलाएं और राजनीति

इस समूह में भारी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। महिला समूहों के सामने एक बड़ा सवाल है। जिंदगी के सभी क्षेत्रों में कुछ अधिकार पाने के लिए क्या उन्हें राजनीति में हिस्सा लेना होगा? किंतु राजनीतिक पार्टियों से जुड़ने के महिलाओं के अनुभव बहुत कटु हैं। वामपंथी पार्टी की मालंचा घोष ने आपबीती सुनाई। बिहार में जब उन्होंने महिलाओं के मुद्दों को उठाने के लिए पार्टी का सहयोग चाहा तो सहयोग तो दूर, उल्टे उन पर यौन-भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर व्यक्तिगत जीवन पर कीचड़ उछाली गई। भाजपा की एक महिला सदस्य ने बड़े-बड़े राजनीतिक नेताओं की काम-भूख की पोल खोली।

महिलाओं के हकों को उठाने का सवाल तो बहुत पीछे छूट जाता है। नेताओं को खुश रखना महिला कार्यकर्ताओं के लिए पहली शर्त है। कमोबेशी सभी राजनैतिक नेताओं और पार्टियों का यही हाल है।

अलग-अलग समस्याएं

इस बार काफी गंभीर मसलों पर गहराई से बातचीत हुई। सम्मेलन में भाग लेने वाली 70 प्रतिशत से अधिक महिलाएं, ग्रामीण मजदूर-किसान वर्ग की थीं। उन्होंने हर समस्या व मुश्किलों को ज्यादा झेला है। उनके लिए हर दिन एक चुनौती है। उनके तरह-तरह के डरों की सीमा नहीं है।

अकेली औरत, विवाहित जीवन में अकेली औरत, तथा विधवा और छोड़ी हुई औरतों पर चर्चा हुई। क्या समाज इनके अस्तित्व को पहचान पाता है? उनको तरह-तरह से दबाकर क्या उनका जीना दूभर नहीं कर देता? सम्मानपूर्वक जीने के लिए उनकी लड़ाई पर बात हुई।

ईसाई ननों ने आपबीती बताई। कई बार उन्हें मजबूरी में नन बनना पड़ता है क्योंकि उन्होंने विवाहित जीवन की बेड़ियों को नहीं अपनाना चाहा।

वे घर की दहलीज़ से निकलकर सामाजिक क्षेत्र में कुछ करना चाहती हैं।

यह कहना कोई गलत नहीं होगा कि वह मुक्ति की कोशिश में लगी महिलाओं का सम्मेलन था।

औरतें सभी तरह के दमन को खत्म करने के लिए कमर कसकर तैयार हैं। इसका अहसास सम्मेलन के दौरान बराबर होता रहा। हमारी बढ़ती ताकत और अपने अंदर एक नई ताकत का अहसास हुआ।

तीन दिन तक अलग-अलग मुद्दों पर बातचीत होने के बाद यह महसूस किया गया कि सांप्रदायिकता का मुद्दा इस समय सबसे अहम है। तय किया गया कि इस बार 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर हम अपने क्षेत्रों में एक साथ सांप्रदायिकता के खिलाफ आवाज़ उठाएंगे। 8 मार्च '91 से लेकर 8 मार्च '92 तक पूरा साल महिलाओं द्वारा सांप्रदायिकता विरोधी अभियान चलाया जाएगा।

समापन

31 दिसंबर को एक बार फिर सब एक साथ बड़े हाल में जमा हुए। अलग-अलग समूहों में हुई चर्चा की रपटें, अलग-अलग भाषाओं में पढ़ी गईं। चार बजे शाम को शहर के मुख्य बाज़ार से हमारी रैली चली। नारे, बैनर, प्लेकार्डों के साथ गीत गाते हमने लगभग 7 किलोमीटर का रास्ता तय किया।

उठ जाग मेरी बहना
चल साथ मेरी बहना
तू मान मेरा कहना
यह जुल्म नहीं सहना

नारी जो अब जगेगी
न मर्दों से डरेगी
न सत्ता से दबेगी
हर जुल्म से लड़ेगी
मेहनतकशों से मिलकर
समाज बदल देगी
स्त्री मुक्ति की निशानी
वह हाथ में थामेगी।

□